E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

काव्यगत शब्द और अर्थ के तीन प्रकार

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

आचार्य मम्मट ने अपने काव्यलक्षण में शब्दार्थयुगल का प्रयोग किया गया है। वहाँ पर शब्द और अर्थ का विशेष्य के रूप में प्रतिपादन है। अतः शब्द और अर्थ की विवेचना अभीष्ट है। उनमें विशेष्य शब्द का प्रथम प्रतिपादन होने से पहले शब्द का ही विवेचन अभीष्ट है। आचार्य मम्मट ने शब्द का लक्षण नहीं दिया है किन्तु पतंजलि ने महाभाष्य में **'प्रतीतपदार्थको ध्वनिः शब्दः'** यह शब्द का लक्षण बताया है। आचार्य मम्मट ने शब्दों के प्रकार का उल्लेख करते हुए कहा है-

"स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यंजकस्तथा"।

अत्रेति काव्ये।

अर्थात् काव्य में वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक ये तीन प्रकार के शब्द होते हैं। कारिका में प्रयुक्त 'अत्र' पद का अभिप्राय काव्य से है।

आचार्य मम्मट ने उपाधिभेद से शब्द के तीन प्रकार बताये हैं वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक। यहाँ पर वाचक शब्द लक्षक और व्यंजक शब्द का उपजीव्य है और वाचक तथा लक्षक दोनों व्यंजक शब्द के उपजीव्य हैं। इस प्रकार लक्षक शब्द वाचक शब्द के आश्रित रहता है और व्यंजक शब्द इन दोनों (वाचक और लाक्षणिक) की अपेक्षा रखता है। जिस प्रकार एक ही व्यक्ति उपाधि-भेद से कभी पाचक कभी पाठक कहा जाता है उसी प्रकार एक शब्द उपाधि-भेद से कभी वाचक, कभी लक्षक और कभी व्यंजक भी हो सकता है । अतः 'गंगायां घोषः' में एक ही गंगा शब्द वाचक, लक्षक और व्यंजक तीनों होता है। यह तीन प्रकार का विभाग शब्दों की उपाधि का होता है।

वाचक-

अब यहाँ सर्वप्रथम वाचक शब्द की विवेचना की जा रही है। आचार्य मम्मट ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है-**"साक्षात्संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचकः"।**

अर्थात् जो साक्षात् संकेतित अर्थ को कहता है, उसे 'वाचक' शब्द कहते हैं।

इसी को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं-**"इहागृहीतसंकेतस्य शब्दस्यार्थप्रतीतेरभावात् संकेतसहाय एव शब्दोऽर्थविशेषं प्रतिपादयतीति यस्य यत्राव्यवधानेन संकेतो गृह्यते स तस्य वाचकः"।**

अर्थात् इस लोकव्यवहार में बिना संकेतग्रह के शब्द के अर्थ को प्रतीति नहीं होती। संकेतग्रह की सहायता से ही शब्द अर्थविशेष का प्रतिपादन करता है इसीलिए जिस शब्द का जिस अर्थ में बिना व्यवधान (अव्यवधान) के संकेत का ग्रहण होता है, वह शब्द उस अर्थ का वाचक होता है।

यहाँ पर संकेतग्रह को जानना आवश्यक है। वस्तुतः शब्द और अर्थ के सम्बन्धज्ञान को संकेतग्रह कहते हैं। संकेतग्रह या शब्दार्थसम्बन्ध का ज्ञान लोकव्यवहार से भी होता है, पर इसके आठ साधन बताये गये हैं-व्याकरण, उपमान, कोष, आप्तवाक्य, व्यवहार, प्रसिद्ध पद का सान्निध्य, वाक्यशेष तथा विवृति-

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानात् कोषाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
सान्निध्यतः सिद्धपदस्य धीराः वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति।

वाचक शब्द चार प्रकार के होते हैं-

क) **जातिवाचक**-जिस शब्द से जाति का ज्ञान होता है या जो शब्द अपनी समस्त जाति का बोध कराये, उसे जातिवाचक कहते हैं। जैसे-गोः, पुस्तकम्, नदी आदि

ख) **गुणवाचक**-गुणवाचक शब्द विशेषण होते हैं और ये किसी वस्तु की विशेषता को प्रकट करते हैं। गुणरूप उपाधि वस्तु का सिद्धधर्म है। वह नित्य एवं पदार्थ में समवेत होता है। यह गुण रूप धर्म ही सजातीय वस्तुओं का व्यावर्तक है। जैसे 'कपिला गौः' और 'कृष्णा गौः' में कपिल और कृष्ण रूप गुण ही दोनों 'गो' में पार्थक्य बताते हैं।इस प्रकार जाति पदार्थ में स्वरूपधायक तत्त्व है तो गुण पदार्थ में विशेषता के आधान के हेतु हैं।

ग) **क्रियावाचक**- जो शब्द क्रिया का निमित्त बनकर प्रयुक्त हो, उसे क्रियावाचक कहते हैं। वस्तुतः क्रिया एक वस्तुधर्म है, किन्तु जाति और गुण के समान सिद्धरूप वस्तुधर्म नहीं है बल्कि

साध्यरूप वस्तुधर्म नहीं है अपितु साध्यरूप वस्तुधर्म है। 'पचति' आदि क्रियावाचक शब्द है, क्योंकि इनमें 'अधिश्रयण' (चूल्हे पर रखने) से लेकर 'अवश्रयण' (अवतारण, पके हुए अन्न के पात्र को चूल्हे से उतारने) तक क्रमशः होने वाली विभिन्न क्रियाएं होती हैं।

घ) **यदृच्छावाचक**-जो किसी एक व्यक्ति का बोध कराये, उसे यदृच्छावाचक शब्द कहते हैं। इसमें व्यक्ति अपनी इच्छा से किसी का नाम रखता है। वस्तुतः यदृच्छा रूप उपाधि वस्तु की संज्ञामात्र है। इसमें वस्तु के धर्म (जाति, गुण और क्रिया) नहीं रहते। जैसे- डित्थ, डवित्थ आदि शब्द यदृच्छा शब्द माने जाते हैं क्योंकि ये एकमात्र वक्ता द्वारा अपनी इच्छा से एक व्यक्ति में ही संकेतित होते हैं।

इस प्रकार व्यक्ति के उपाधि रूप जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा में संकेतग्रह होता है और तभी शब्दों के चार विभाग बनते हैं। वैयाकरण जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा रूप चतुर्विध उपाधियों में संकेतित अर्थ सिद्ध करते हैं-**'गौः शुक्लश्चलो डित्थः'** इत्यादौ **'चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः'** इति महाभाष्यकारः। अर्थात् गौ (गाय), शुक्ल, चल (चलना) और डित्थ इत्यादि में शब्दों की प्रवृत्ति चार प्रकार की होती है, यह महाभाष्यकार का कथन है।

लाक्षणिक-जो शब्द लक्षणाशक्ति द्वारा लक्ष्यार्थ या लाक्षणिक अर्थ को (अन्य अर्थ को) लक्षित कराए उसे लक्षक या लाक्षणिक शब्द कहते हैं। जिन शब्दों से लाक्षणिक अर्थ प्रकट हो, उसे लक्षक शब्द कहा जायेगा। आचार्य मम्मट का कथन है-**"तद्भूर्लाक्षणिकः। 'शब्द' इति सम्बध्यते। तद्भूस्तदाश्रयः"।** अर्थात् लक्षणा का आश्रयभूत शब्द लाक्षणिक कहलाता है। यहाँ लाक्षणिक से शब्द का सम्बन्ध है अर्थात् लाक्षणिक शब्द। 'तद्भूः' का अर्थ उसका आश्रय है अर्थात् लक्षणा का आश्रय है। लक्षणा को परिभाषित करते हुए आचार्य मम्मट ने कहा है-

"मुख्यार्थबाधे तद्योगे रुढितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपिता क्रिया"।।

अर्थात् मुख्य अर्थ के बाध होने पर तथा उस (मुख्य अर्थ) के योग (सम्बन्ध) होने पर रुढ़ि अथवा प्रयोजन से जिसके द्वारा अन्य अर्थ की प्रतीति होती है, वह आरोपित वृत्ति (व्यापार) लक्षणा है।

व्यञ्जक-यह शब्द का तीसरा प्रकार है। जो शब्द व्यञ्जना शक्ति द्वारा वाच्यार्थ तथा लक्ष्यार्थ से भिन्न अर्थ की प्रतीति कराए उसे व्यञ्जक शब्द कहते हैं। आचार्य मम्मट का कथन है-**'तद्युक्तो व्यञ्जकः शब्दः। तद्युक्तो व्यञ्जनयुक्तः।'** अर्थात् उस व्यञ्जना से युक्त शब्द व्यञ्जक शब्द कहलाता है। व्यञ्जना को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट का कथन है-

"यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते।

फले शब्दैकगम्येऽत्र व्यञ्जनान्नापरा क्रिया"।।

प्रयोजनप्रतिपादियिषया यत्र लक्षणया शब्दप्रयोगस्तत्र नान्यतस्तत्प्रतीतिरपि तु तस्मादेव शब्दात्। न चात्र व्यञ्जनादृतेऽन्यो व्यापारः।

अर्थात् जिस प्रयोजन विशेष की प्रतीति कराने के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है, केवल शब्द से गम्य उस प्रयोजन के विषय में व्यञ्जना के अतिरिक्त और कोई व्यापार नहीं है। प्रयोजन विशेष के प्रतिपादन करने की इच्छा से जहाँ लक्षणा द्वारा शब्द प्रयोग किया जाता है, वहाँ (अनुमानादि) अन्य के द्वारा उसकी प्रतीति नहीं होती, बल्कि उसी शब्द के द्वारा होती है। यहाँ व्यञ्जना के अतिरिक्त कोई व्यापार नहीं है।

काव्य के अर्थ-

शब्द की भाँति उपाधिभेद से अर्थ भी तीन प्रकार के होते हैं-**"वाच्यदयस्तदर्थाः स्युः। वाच्य-लक्ष्य-व्यंग्याः"।** वाच्य आदि उन शब्दों के अर्थ होते हैं। वाच्यादि का तात्पर्य वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य है। आचार्य मम्मट ने वाचक, लक्षक और व्यंजक ये तीन प्रकार के शब्द बताये हैं। उन तीन प्रकार के शब्दों के तीन अर्थ होते हैं- वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ।

वाच्यार्थ मुख्य अर्थ होता है। जैसे- **'गङ्गायां घोषः'**- इस उदाहरण में 'गङ्गा' शब्द का मुख्य (वाच्य) अर्थ गंगा का प्रवाह है। इस मुख्य (वाच्य) अर्थ को प्रकट करने वाला 'गङ्गा' शब्द वाचक शब्द है। वाच्यार्थ का ज्ञान अभिधाशक्ति से होता है।

मुख्य अर्थ से सम्बद्ध अन्य अर्थ की प्रतीति लक्ष्यार्थ है। जैसे, 'गङ्गा' शब्द का तट (तीर) रूप लक्ष्य अर्थ है। लक्षणा शक्ति की सहायता से जिस अर्थ का ज्ञान हो, उसे लक्ष्यार्थ कहते हैं। इससे मुख्यार्थ के बाधित होने पर उससे सम्बद्ध अन्यार्थ का बोध होता है।

इसी प्रकार इनसे भिन्न अर्थ की प्रतीति को व्यंग्यार्थ कहते हैं। यहाँ पर शैत्य-पावनत्व रूप अर्थ व्यंग्यार्थ है और उसका बोधक शब्द व्यञ्जक है। जो अर्थ व्यञ्जना शक्ति से प्रतीत हो, उसे व्यंग्यार्थ कहते हैं।

किन्हीं आचार्यों के मत में तात्पर्यार्थ भी एक अर्थ होता है-**"तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित्।"** इसे स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट ने कहा है-**"आकांक्षायोग्यतासन्निधिवशाद्वक्ष्यमाणस्वरूपाणां पदार्थानां समन्वये तत्पर्यार्थो विशेषवपुरपदार्थोऽपि वाक्यार्थः समुल्लसतीत्यभिहितान्वयवादिनां मतम्। वाच्य एव वाक्यार्थ इति अन्विताभिधानवादिनः"।**

अर्थात् आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि के कारण उन पदार्थों का अन्वय परस्पर सम्बन्ध होने पर विशेष आकार वाला अपदार्थ अर्थात् पदों का अर्थ न होने पर भी तात्पर्यार्थ रूप वाक्यार्थ होता है, यह अभिहितान्वयवादियों का मत है। वाच्यार्थ ही वाक्यार्थ है, यह अन्विताभिधानवादियों का मत है ।

आचार्य मम्मट वाचक, लक्षक और व्यंजक तीन प्रकार के शब्द और वाच्य, लक्ष्य व्यंग्य ये तीन प्रकार का अर्थ मानते हैं। किन्तु कुमारिल भट्ट के मतानुयायी मीमांसक तात्पर्यार्थ रूप अन्य अर्थ भी स्वीकार करते हैं। काव्यप्रकाश में तीन प्रकार के शब्द और तीन प्रकार के अर्थ बताये गये हैं और उन तीनों प्रकार के अर्थों को बोध कराने वाली तीन शक्तियों मानी गई हैं अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। इन तीन शक्तियों के द्वारा शब्दों के अर्थ का ज्ञान होता है । इसी को वाक्यार्थज्ञान भी कहते है। वाक्यार्थ ज्ञान के सम्बन्ध में वैयाकरण, नैयायिक और मीमांसक तीनों ने विचार किया है।

वाक्यार्थज्ञान के सम्बन्ध में मीमांसकों के दो मत पाये जाते हैं (१) अभिहितान्वयवाद और (२) अन्विताभिधानवाद। इनमें अभिहितान्वयवाद को मानने वाले कुमारिलभट्ट और पार्थसारथिमिश्र आदि हैं और अन्विताभिधानवाद के प्रतिपादक प्रभाकरगुरु तथा शालिकनाथमिश्र आदि हैं। यहाँ दोनों मतों का प्रतिपादन किया जा रहा है-

(१) **अभिहितान्वयवाद**-अभिहितान्वयवाद का अर्थ है अभिहित अर्थात् अभिधाशक्ति के द्वारा बोधित (कथित) अर्थों का अन्वय (सम्बन्ध) अर्थात् अभिधाशक्ति के द्वारा पदों का अर्थ अभिहित (कथित) होता है, बाद में उनका परस्पर अन्वय होता है-**"अभिहितानां स्वस्ववृत्या पदैरुपस्थितानामर्थानामन्वयो भवतीति ये वदन्ति, ते अभिहितान्वयवादिनः"।** इस प्रकार अभिहितान्वयवाद के अनुसार पहले अभिधा शक्ति के द्वारा पद से पदार्थ का ज्ञान होता है। उसके पश्चात् वक्ता के तात्पर्य के अनुसार उनका परस्पर अन्वय (सम्बन्ध) होता है, जिससे वाक्यार्थ का ज्ञान होता है। इस प्रकार वाक्यार्थज्ञान में अभिहित पदार्थों का अन्वय (सम्बन्ध) होने के कारण इसे अभिहितान्वयवाद कहते हैं। इस मत में पदार्थों का अन्वय वक्ता के तात्पर्य के अनुसार होता है अतः इसे 'तात्पर्यार्थ' या वाक्यार्थ कहते हैं और इसे बोध कराने वाली शक्ति को 'तात्पर्याख्या' शक्ति कहते हैं । अभिहितान्वयवाद के अनुसार किसी भी पद का अर्थ प्रथमतः अभिधा शक्ति के द्वारा होता है। बाद में उनका आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि के आधार पर परस्पर अन्वय (सम्बन्ध) होता है। वह सम्बद्ध पदार्थज्ञान वाक्यार्थज्ञान या शब्दार्थ बोध कहलाता है। जैसे 'गामानय' इस वाक्य में दो पद हैं-'गाम्' और 'आनय'। इनमें 'गो' पद का अर्थ है 'सास्नादिविशिष्ट पशु'। यह एक सामान्य अर्थ है। इसी प्रकार 'अम्' प्रत्यय का अर्थ 'कर्मत्व' है और 'आनय' क्रियापद का अर्थ आनयन रूप क्रिया का ज्ञान है। यहाँ पर वक्ता को अभीष्ट पशुविशेष का ज्ञान नहीं होता। इस विशिष्ट अर्थ का ज्ञान जब आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि के द्वारा एक पद अर्थ के साथ दूसरे पद के अर्थ का अन्वय (सम्बन्ध) होता है, तभी होता है। अतः इन दोनों पदों के सामान्य अर्थ के अभिहित (कथित) होने के बाद परस्पर अन्वय होने पर जो सम्बद्ध रूप विशिष्ट अर्थ होता है वही वाक्यार्थज्ञान होता है, इसी को तात्पर्यार्थ कहते हैं, इसी को अभिहितान्वयवाद कहते हैं। इसी को स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं कि-आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि के कारण

वक्ष्यमाण स्वरूप पदार्थों का परस्पर अन्वय होने पर तात्पर्यार्थ रूप पदार्थ से भिन्न विशेष प्रकार का वाक्यार्थ होता है।

इस प्रसंग में आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि पदों का अर्थ भी समझ लेना आवश्यक प्रतीत होता है-

आकांक्षा-जहाँ पर एक पद के सुनने के बाद दूसरे पद के बिना अर्थ की प्रतीति न होने पर दूसरे (अन्य) पद की जो इच्छा होती है, उसे 'आकांक्षा' कहते हैं-**"येन पदेन विना यस्य पदस्यान्वयानुभावकत्वं तेन पदेन सह तस्याकांक्षा"**। जैसे- कोई व्यक्ति कहता है कि 'आनय' (लाओ)। इस पद के सुनने के बाद तुरन्त जिज्ञासा होती है कि 'क्या'? इस आकांक्षा की पूर्ति केवल 'आनय' पद से नहीं होती; बल्कि 'गाम्' या 'घटम्' आदि पदों से आकांक्षा की पूर्ति हो जाती (गामानय या घटमानय); क्योंकि ये दोनों पद परस्पर 'सापेक्ष' होते हैं। इसी प्रकार 'गाम्' या 'घटम्' आदि केवल कारक पदों से कोई अर्थ ज्ञान नहीं होता, उसके लिए क्रियापद अपेक्षित है। तभी सम्यक् अर्थबोध होता है। इस प्रकार आकांक्षा से रहित वाक्य अप्रामाणिक होता है। केवल कारक या क्रिया पदों का समूह वाक्यार्थज्ञान नहीं करा सकता। जैसे गीः, अश्वः, पुरुषः आदि पद-समूह निराकांक्ष होने से प्रामाणिक नहीं होते ।

योग्यता-जहाँ पर एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ सम्बन्ध में बाधा उपस्थित न हो, उसे योग्यता कहते हैं-**"पदार्थानां परस्परसम्वन्धे बाधाभावे योग्यता"**। जो पदार्थ परस्पर अन्वय के योग्य नहीं होते, वे अप्रामाणिक वाक्य कहे जाते हैं। जैसे 'अग्निना सिञ्चति' (आग से सींचता है)- इस वाक्य में 'अग्नि' में सिंचन (सेचन) की योग्यता न होने से अप्रामाणिक है क्योंकि अग्नि से सींचने का कार्य असम्भव है। अतः अग्नि और सिंचन के पारस्परिक सम्बन्ध में बाधा उत्पन्न होती है। इसलिए यह वाक्य प्रामाणिक नहीं हो सकता ।

सन्निधि-एक ही वक्ता द्वारा पदों का बिना विलम्ब के उच्चारण करना 'सन्निधि' है-**'पदानामविलम्बेनोच्चारणं सन्निधिः'**। जैसे- कोई व्यक्ति 'घटम्' (घड़ा) उच्चारण करने के दो घण्टे बाद 'आनय' (लाओ) पद का उच्चारण करता है तो यह वाक्य प्रामाणिक नहीं होगा,

क्योंकि इसमें सन्निधि का अभाव है। अतः परस्पर अन्वय योग्य पदों की अव्यवहित उपस्थिति होने पर ही वाक्यार्थज्ञान होगा। जैसे बिना विलम्ब के एक साथ 'घटमानय' यह वाक्य कहने पर अर्थज्ञान होता है। यदि परस्पर अन्वय योग्य पदार्थों की अव्यवहित उपस्थिति में किसी प्रकार की बाधा पड़ती है तो वह न तो वाक्य कहलायेगा और न उससे वाक्यार्थ -ज्ञान होगा ।

इस प्रकार आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि से युक्त पदसमूह ही वाक्य कहलाता है और उसी से वाक्यार्थ का ज्ञान होता है। तात्पर्य यह कि अभिहितान्वयवाद के अनुसार पहले पदार्थ का ज्ञान होता है और बाद में तात्पर्यशक्ति के द्वारा आकांक्षादि विशिष्ट पदार्थों का परस्पर अन्वय होता है और उससे विशिष्ट वाक्यार्थ का ज्ञान होता है।

तात्पर्यार्थ-वाक्यार्थज्ञान के लिए 'तात्पर्यज्ञान' आवश्यक है। तात्पर्य शब्द का अर्थ है- वक्ता का अभिप्राय। प्रसंग के अनुसार वक्ता के अभिप्राय का निर्णय किया जाता है। जैसे-किसी ने 'सैन्धवमानय' कहा। 'सैन्धव' पद के दो अर्थ होते हैं 'नमक' और 'घोड़ा'। यदि भोजन करते समय किसी ने 'सैन्धवमानय' कहा तो वहाँ सैन्धव पद का अर्थ नमक होगा, क्योंकि यहाँ सैन्धव पद से वक्ता का तात्पर्य 'नमक' से है। यदि यात्रा के समय 'सैन्धवमानय' कहा जाय तो वहां वक्ता का तात्पर्य घोड़े से होने से सैन्धव पद का अर्थ घोड़ा होगा क्योंकि यात्रा के समय घोड़े की आवश्यकता होती है। इस प्रकार वक्ता के अभिप्रेत अर्थ का बोध कराने के लिए तात्पर्यार्थज्ञान आवश्यक है। इसी प्रकार 'घटमानय' इस वाक्य में प्रथम 'घट' पद का सामान्य 'घट' और 'आनय' पद का सामान्य 'आनयन' रूप क्रिया का बोध होता है। बाद में वक्ता अपने अभिप्राय के अनुसार साकांक्षादिविशिष्ट पदों का अन्वय करता है तब एक विशिष्ट अर्थ का ज्ञान होता है कि 'अमुक घड़ा (घटविशेष) लाओ' यही तात्पर्यार्थ है, इसी को वाक्यार्थ कहते हैं।

(२) **अन्विताभिधानवाद**-अन्विताभिधानवाद के अनुसार अभिधाशक्ति से पहले पदार्थों की उपस्थिति नहीं होती, बल्कि पदों द्वारा अन्वित पदार्थों की ही उपस्थिति होती है, अर्थात् पहले पद अन्वित होते हैं बाद में विशिष्ट अर्थ (वाक्यार्थ) को कहते हैं, इसलिए उसे 'अन्विताभिधानवाद' कहते हैं-**"पदानि अन्वितानि भूत्वा पश्चाद्विशिष्टमयं कथयन्तीति यो**

वदति, सोऽन्विताभिधानवादी"। भाव यह कि अभिहितान्वयवाद में पहले अभिधाशक्ति से पदार्थ का ज्ञान होता है बाद में तात्पर्य के अनुसार उनका परस्पर अन्वय होता है, फिर उससे तात्पर्यार्थ या वाक्यार्थज्ञान उपस्थित होता है किन्तु अन्विताभिधानवाद में अभिधा शक्ति के द्वारा अन्वित पदार्थ ही उपस्थित होता है, उसके लिए तात्पर्याशक्ति नामक पृथक् शक्ति मानने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि अभिधाशक्ति में संकेतग्रह आवश्यक होता है और संकेतग्रह केवल पदार्थ में नहीं, बल्कि अन्वित पदार्थ में होता है। अतः अभिधाशक्ति से अन्वित पदार्थ ही उपस्थित होता हैं, केवल पदार्थ नहीं । अतः इस मत के अनुसार अन्वित अर्थ की प्रतीति के लिए 'तात्पर्याशक्ति' मानने की आवश्यकता नहीं होती । इसी बात को ग्रन्थकार निम्न पंक्तियों में व्यक्त करते हैं-**"वाच्य एव वाक्यार्थ इत्यन्विताभिधानवादिनः"**। इस प्रकार अन्विताभिधानवाद के अनुसार अन्वित पदार्थों की उपस्थिति संकेतग्रह के द्वारा होती है और संकेतग्रह का आधार व्यवहार है। जैसे-कोई उत्तम वृद्ध मध्यम वृद्ध से कहता है कि 'गामानय' अर्थात् गाय लाओ। समीप में बैठा हुआ बालक 'गामानय' इस वाक्य को सुनता है और 'सास्नादिविशिष्ट पशु' विशेष (गाय) को लाते हुए देखता है तो पृथक् पदार्थ ज्ञान न होने पर भी वह 'गामानय' इस अखण्ड वाक्य से सास्नादिविशिष्ट गो का 'आनयन' रूप वाक्यार्थ का ग्रहण करता है। इसके बाद जब बालक 'गां नय', 'अश्वमानय' इस वाक्य को सुनता है तो 'गां नय' में आनय के स्थान पर 'नय' पद का प्रयोग तथा 'अश्वमानय' में 'आनय' पद को सुनकर और प्रवृत्ति-निवृत्ति के द्वारा प्रवर्तन और निवर्तन रूप क्रिया को देखकर 'नय' का अर्थ 'ले जाना' और 'आनय' का अर्थ 'लाना' समझने लगता है। यही संकेतग्रह की प्रक्रिया है। इस प्रकार संकेतग्रह अन्वित पदार्थ में ही होता है; क्योंकि प्रवृत्ति का व्यवहार अन्वित पदार्थ में ही होता है-**"विशिष्टा एव पदार्थः वाक्यार्थः, न तु पदार्थानां वैशिष्ट्यम्"**।